Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 2 | ISSN : 2582-0095

नीरसता से परे जीवन की सार्थकता की वकालत करती जन आंदोलंकारी कविताएँ

डॉ अर्चना त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर, डॉ भीमराव अंबेडकर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

Article Info
Volume 4 Issue 2
Page Number : 151-153
Publication Issue :
March-April-2021
Article History
Accepted : 02 March 2021
Published : 15 March 2021

सारांश– 'स्वातंत्र्योत्तर' भारत का परिदृश्य पंचवर्षीय योजनाओं, युद्धों, परमाणु परीक्षणों और साम्राज्यवाद के आगे समर्पण से ही निर्मित नहीं होता बल्कि तेलंगाना, नक्सलबाड़ी से लेकर संपूर्ण क्रांति आंदोलन, देश की स्वतंत्रता से हताश नौजवानों, किसानों की आत्महत्या, महिला–उत्पीड़न, अस्मिता विमर्श मूलक आंदोलनों यानी सामाजिक, नव सामाजिक आंदोलनों से भी निर्मित होता है।

मुख्य शब्द- नीरसता जीवन सार्थकता आंदोलन सामाजिक आंदोलन साम्राज्यवाद।

"मैं जब रात के अँधेरे में
आग की ख़बरें शहर की दीवारों पर
लिखता था
तो उसकी कविताएँ कंदीलों की तरह
अँधेरे रास्ते में जलती थीं।
मैं समझता था कविता लिखना
ख़बरें लिखने से बड़ा काम है
और वह आदमी सचमुच महान है
जो अपनी कविताओं में ख़तरनाक ख़बरें
सुनाता है
और 'अभिव्यक्ति के ख़तरे' उठाता है"

उत्पीड़न, शोषण के विरोध में खड़ी की गई भारतीय जन की लंबी लड़ाई में सातवाँ तथा आठवाँ दशक महत्वपूर्ण है। आंदोलन के प्रभाव में कविताएँ अपने ढुलमुल ढाँचे को तोड़कर समाज के सामने सत्ता को ललकारती हुई सवाल खड़े कर रही थी। 1965 में केदारनाथ सिंह 'चुनाव से पहले' लिखा जिसके माध्यम से ढीला ढाला चुनावी गठबंधन सामने आया।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

उसी समय रघुवीर सहाय ने 'वे ख़ूब हँसे' लिखा और धूमिल ने 'पटकथा' के माध्यम से सवाल किया कि जनतंत्र क्या तीन थके हुए रंगों का नाम है, जिसे एक पहिया ढोता है?

इसी समय जितने कवि उतने आंदोलन भी सामने आने लगे थे यानी कविता आंदोलन, इनसे उकताकर डॉ. जगदीश गुप्त ने 'धर्मयुग' पत्रिका में एक लेख लिखा 'किसिम-किसिम की कविता', जिसमें उन्होंने इन तमाम आंदोलनों का नाम गिनाया था। ये तरह-तरह की कविताएँ दरअसल एक ही तरह की कविता की अंत:प्रवृत्तियाँ थीं, जो टूट-टूटकर सामने आ रही थीं। इसी समय राजकमल चौधरी एक साथ अमेरिकी बीट पीढ़ी, बंगाल की भूखी पीढ़ी और हिंदी की अकविता आंदोलन से जुड़े हुए थे। इन्हें (राजकमल चौधरी को) महानगर के कवि की संज्ञा दी गई और धूमिल को ग्रामीण कवि की।

इसी तरह आगे कवि विजेंद्र, कुमारेंद्र पारसनाथ, आलोक धन्वा, गोरख पांडेय, वेणु गोपाल, कुमार विकल आदि ने कविता को पिछले बिंब, रूमानी भाव से बाहर निकालकर आमजन से जोड़ा। यद्यपि इसके पहले से केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, शील की कविता में श्रम की उपादेयता पर बात की गई है, और इनके भी पहले पंत, निराला, सोहन लाल द्विवेदी आदि की कविताओं में श्रम, श्रमिक, शोषण-शोषक इत्यादि पर कविताएँ लिखी जा चुकी थीं।

निराला ने 'जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ' शीर्षक कविता में लिखा है-

जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ

आज अमीरों की हवेली

किसानों की होगी पाठशाला

कवियों की कविताओं में समाज, समाज का रूप आने के पीछे प्रगतिशील लेखक संघ का प्रमुख हाथ था।

ग़ज़ल जो कि हमेशा से रूमानी भाव में ही लिखी जाती थी उसे रूमानियत से बाहर निकालकर ग़ज़लकारों ने आम जन की त्रासदी को अपना विषय वस्तु बनाना शुरू किया, जिसमें अदम गोंडवी, दुष्यंत कुमार, गोपाल सिंह नेपाली आदि ग़ज़लकार आते हैं। अदम गोंडवी ने लिखा है-

मानवता का दर्द लिखेंगे, माटी की बू-बास लिखेंगे

हम अपने इस कालखंड का एक नया इतिहास लिखेंगे।।

आंदोलन के दमन और जेल के बाद एक दौर ऐसा भी आया जब जनांदोलनकारी कविता की असफलता सामने आई, इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि ये कविताएँ अपने साथ आलोचना पक्ष को लेकर नहीं चल पाईं।

माओत्से तुंग कहते हैं कि सिर्फ़ विद्रोह कर देना ही पर्याप्त नहीं होता, उसकी तार्किक परिणति तक पहुँचना ज़रूरी होता है, इसलिए समूह के समर्थन की आवश्यकता पड़ती है। इसे कविता और आंदोलन दोनों रूपों में लागू किया जा सकता है। समूह के लगातार समर्थन नहीं होने के कारण ही आज़ादी के बाद हुए प्रमुख आंदोलन तेलंगाना, नक्सलबाड़ी और आगे संपूर्ण क्रांति आंदोलन को एक साथ पस्त होते देखा गया, जिसमें से नक्सलबाड़ी आंदोलन कभी हारता कभी मज़बूत होता स्थिति के साथ आज भी खड़ा है। लेकिन समाज के बड़े समूह के समर्थन न होने की वजह से यह आंदोलन लगातार दमित हो रहा है। इसी समूह के विषय में कार्ल मार्क्स समाज को वर्गों में बाँटते हैं जिससे एक धड़े का, बहुसंख्यक धड़े का समर्थन क्रांतिकारी दल को लेना होता है। इस संदर्भ में कुमार विकल की 'एक छोटी सी लड़ाई' और गोरख पांडेय का 'समझदारों का गीत' कविता महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार देखें तो हर देश काल में सामाजिक–आर्थिक राजनीतिक विषमताओं के कारण स्थापित सत्ता के विरुद्ध विद्रोह हुए हैं। अन्याय के ख़िलाफ़ तरह–तरह तरीकों से प्रतिरोध व संघर्ष होते रहने का अपना इतिहास है। इन संघर्षों में कभी सत्ता को बेदख़ल करने का उद्देश्य होता है या कभी समाज को बदल देने की चाहत। आंदोलन से प्रभावित कविताएँ भी इसी तरह लिखी जाती रही हैं।

जनांदोलन विषम परिस्थितियों की कारक व्यवस्था को बदलने के लिए की गई दीर्घकालिक सांस्कृतिक, राजनीतिक व सामाजिक प्रक्रिया है। किसी आंदोलन को कई जनसंघर्षों से होकर गुजरना पड़ता है या पड़ सकता है। सवाल यह उठता है कि दमन और संघर्ष के विविध रूपों सफलताओं–असफलताओं, हताशाओं को उस समय का साहित्य दर्ज़ करता है कि नहीं?

सर्वप्रथम स्वातंत्र्योत्तर शब्द विचारणीय है। 'स्वातंत्र्योत्तर' शब्द समय–सूचक है जो भारत के संदर्भ में 1947 के बाद के समय को सूचित करता है। यह वह समय है जब भारत ने अंग्रेज़ों के औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता हासिल की।

'स्वातंत्र्योत्तर' भारत का परिदृश्य पंचवर्षीय योजनाओं, युद्धों, परमाणु परीक्षणों और साम्राज्यवाद के आगे समर्पण से ही निर्मित नहीं होता बल्कि तेलंगाना, नक्सलबाड़ी से लेकर संपूर्ण क्रांति आंदोलन, देश की स्वतंत्रता से हताश नौजवानों, किसानों की आत्महत्या, महिला–उत्पीड़न, अस्मिता विमर्श मूलक आंदोलनों यानी सामाजिक, नव सामाजिक आंदोलनों से भी निर्मित होता है।

औपनिवेशिक शासन के तहत रैयत यानी किसानों के जीवन और ज़मीन में आए उतार–चढ़ाव, 1793 में इस्तमरारी बंदोबस्त का लागू होना, ज़मींदारी का अंत, ब्रिटिश कंपनियों का एकछत्र साम्राज्य स्थापित होना, 1780 के आस–पास संथालों का आगमन, 1855–56 में संथाल विद्रोह और आगे अन्य किसान विद्रोह को बताते हुए आज़ादी से पहले के हुए कुछ महत्वपूर्ण आंदोलनों की प्रमुख भूमिका रही है, साथ ही तत्कालीन समय में हुए आंदोलन की क्या अच्छाई–बुराई रही है, किस तरह आंदोलन विघटित हुए, इत्यादि मुद्दे महत्वपूर्ण हैं।

कविता के बदलते रूप में इन तीनों (तेलंगाना, नक्सलबाड़ी, संपूर्ण क्रांति) आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है अत: इन्हें अलग–अलग शीर्षक देकर कविता का मूल्यांकन करना उचित लगा। इस विषय का कैनवस और इसकी सिद्धांत–परकता इसे काफ़ी जटिल बना देती है और अध्ययन के लंबे क्रम की माँग करती है, निश्चित रूप से एक अध्ययन के लंबे क्रम की मांग करती है।

सन्दर्भ

1. साठोत्तरी कविता विद्रोही प्रतिमान – रतन कुमार पांडेय, अनंग प्रकाशन, दिल्ली

2. नक्सलबाड़ी आंदोलन और समकालीन हिंदी कविता – देवेंद्र, मेधा बुक्स, दिल्ली।